डॉ॰ अंबेडकर के सामाजिक एवं राजनीतिक विचारों का प्रभावः महाराष्ट्र एवं उत्तर प्रदेश के दलित आंदोलन का तुलनात्मक अध्ययन

बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय लखनऊ से
राजनीति विज्ञान विषय में पी.एच.डी. की उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध सारांश

शोध निर्देशक
प्रो. सार्तिक बाघ
राजनीति विज्ञान विभाग

शोधार्थी
सीमा कुमारी
नामांकन संख्याः 338/14

राजनीति विज्ञान विभाग
अम्बेडकर अध्ययन विद्यापीठ
बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय
(केन्द्रीय विश्वविद्यालय)
लखनऊ–226025

2019

शोध सारांश

आधुनिक भारतीय राजनीति एवं समाज के स्वरूप निर्धारण में डॉ अम्बेडकर के विचारों एवं कृत्यों का महत्वपूर्ण योगदान है। सदियों से शोषित–वंचित एवं अधिकार विहीन दलित तबके को लोकतांत्रिक भारत में समान राजनीतिक अधिकार दिलाने और गरिमापूर्ण सामाजिक हैसियत सुनिश्चित कराने की दिशा में डॉ अम्बेडकर ने ऐतिहासिक भूमिका का निर्वाह किया। डॉ अम्बेडकर के विचारों के निर्धारण में न सिर्फ समकालीन सामाजिक – राजनीतिक आंदोलनों एवं पाश्चात्य शिक्षा का प्रभाव पड़ा बल्कि उनकी स्वयं अपनी दलित पारिवारिक पृष्ठभूमि के जीवनानुभवों ने भी इसमें अहम भूमिका निभाई। वे एक साथ राजनीतिक चिंतक एवं राजनेता तथा एक साथ समाजशास्त्री एवं सामाजिक आंदोलनकारी थे। चूंकि उनके विचारों का निर्धारण सैद्धांतिक अध्ययन से कहीं अधिक व्यावहारिक अनुभवों की बदौलत हुआ था अतः उनके विचार उनके बाद भी प्रासंगिक बने रहे और उनमें समय के साथ विकसित होने की सम्भावना बनी रही। भारत के दलितों की अवस्था में सुधार के लिए उन्होंने न सिर्फ अपने जीवनकाल में महत्वपूर्ण कार्य किए बल्कि वे अपने पीछे ऐसे राजनीतिक एवं सामाजिक विचारों की विरासत छोड़ गए जिन्हें अपना कर परवर्ती काल में दलित जन राजनीतिक ढाँचे में अपनी भागीदारी को सुनिश्चित करने के साथ–साथ अपनी सामाजिक हैसियत को और सुदृढ कर सकते थे।

डॉ अम्बेडकर सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन को राष्ट्र निर्माण और व्यवस्था परिवर्तन का मूल आधार मानते थे। उनके सामाजिक विचार उनके जीवनानुभवों के साथ–साथ बौद्ध और पाश्चात्य चिंतन से गहरे रुपों में प्रभावित था। उन्होंने जाति, वर्ण, धर्म जैसे विषयों पर ऐतिहासिक और सामाजशास्त्रीय पद्धति से विचार किया। उन्होंने वर्ण और जाति की अपरिवर्तनशीलता का कारण इनकी हिंदू धर्म सम्मत विधि मान्यता में देखा और खान–पान तथा अंतर्जातीय विवाहों के साथ साथ धार्मिक सुधारों को भी इनके विनाश के लिए आवश्यक माना। दलितों और वंचित वर्गों की अवस्था में सुधार के लिए शिक्षा की महत्ता को डॉ अम्बेडकर भली भांति समझते थे। उनके अनुसार शिक्षा प्राप्त दलित ही आपस में एकजुट होकर अपने अधिकारों के लिए संघर्ष कर सकते हैं। स्वतंत्रता, समानता, बंधुता और न्याय पर उनकी दृढ आस्था ने उन्हें स्त्री अधिकारों के लिए संघर्ष करने के लिए भी प्रेरित किया। उन्होंने विश्व के सभी धर्मों का गहन अध्ययन किया और बौद्ध धर्म की तार्किक और भौतिकवादी व्याख्या कर के उस के क्रांतिकारी स्वरुप को निरुपित किया।

डॉ अम्बेडकर दलित हितों को लक्ष्यबद्ध करके राजनीतिक पटल पर अवतरित हुए थे। यद्यपि उन्होंने राष्ट्र, राष्ट्रवाद, राज्य, अल्पसंख्यकों के अधिकारों, लोकतंत्र, संविधान, आरक्षण,

भारत–विभाजन, राजनीतिक दलों की गतिविधियों, मौलिक अधिकारों आदि पर विस्तार से लिखा। वे व्यवस्था परिवर्तन के लिए संवैधानिक रीतियों के समर्थक थे और सत्ता प्राप्ति को व्यवस्था परिवर्तन का माध्यम समझते थे। उन्होंने दलितॉ की राजनीतिक भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए जिन राजनीतिक प्रयोगों को किया उन्होंने परवर्ती दलित नेताओं के लिए पथ–प्रदर्शक का कार्य किया।

डॉ अम्बेडकर के बाद उनके विचारों को अपना कर नवोदित शिक्षा प्राप्त दलित मध्यम वर्ग, जिसका मुख्य आर्थिक आधार सरकारी नौकरी थी जिसे अम्बेडकर ने आरक्षण के अपने संवैधानिक प्रावधानों के द्वारा सम्भव बनाया था, ने देश के विभिन्न भागों में राजनीतिक, सामाजिक एवं वैचारिक आंदोलनों को खड़ा करने का प्रयास किया। इन प्रयासों का विशेष प्रभाव हमें डॉ अम्बेडकर के अपने गृह राज्य महाराष्ट्र एवं उत्तर प्रदेश में खास तौर पर नजर आता है जिनका तुलनात्मक अध्ययन इस शोध का प्रमुख विषय है। इस शोध के जरिए हम इस बात को समझने का प्रयास करेंगे कि अम्बेडकर के बाद उनके राजनीतिक एवं सामाजिक विचारों ने परवर्ती दलित आंदोलन को किस प्रकार प्रभावित किया। महाराष्ट्र एवं उत्तर प्रदेश के दलित आंदोलनों के तुलनात्मक अध्ययन से हमें परवर्ती काल में न सिर्फ डॉ अम्बेडकर के विचारों की प्रासंगिकता नजर आती है बल्कि यह भी परिलक्षित होता है कि डॉ अम्बेडकर के विचारों को व्यावहारिक राजनीति एवं परिस्थितिजन्य दबावों की वजह से आधे अधूरे स्वरूप में अपनाने से दलित आंदोलन अपने वांछित लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता। परवर्ती दलित नेताओं और चिंतकों ने समकालीन परिस्थितियों के बर–अक्स अम्बेडकारवाद को विकसित करने के बजाए स्वयं अम्बेडकर को ही प्रतीक में बदल दिया जिसका उपयोग ऐसे लोग भी अपनी राजनीतिक स्वार्थ सिद्धि के लिए कर सकते थे जिनका अम्बेडकरवाद से दूर–दूर तक वास्ता नहीं था।

महाराष्ट्र में दलित आंदोलन

बंबई प्रांत डॉ अम्बेडकर की व्यवहारिक कर्म भूमि थी अतएव हमें उनके सामाजिक–राजनीतिक विचारों का सर्वप्रथम महाराष्ट्र में ही नजर आता है। सामाजिक रुप से अम्बेडकर ने अपने आंदोलन की शुरुआत सुधारवादी तौर तरीके से मंदिर प्रवेश आंदोलन के रुप में की थी। मंदिर प्रवेश एवं पीने के पानी का हक लेने मात्र से दलितों की समस्या का समाधान नही हो सकता था। ऐसा समझते हुए, डॉ अंबेडकर ने दलितों को राजनीतिक अधिकार दिलाने के लिए अंग्रेजी सरकार को दलितों की वास्तविक स्थिति से अवगत कराया। गोलमेज सम्मेलन में अश्पृस्यता की समस्या को विश्व स्तर का मुद्दा बना दिया। अंबेडकर की बात को गंभीरता से लेते हुए रैम्जे मैक्डोनेल्ड अवार्ड द्वारा दलितों को पृथक निर्वाचन का अधिकार मिला । अगर यह अवार्ड पूना पैक्ट के द्वारा निरस्त नही किया जाता तो आज दलितों की स्थिति अलग रहती ।

कालांतर में डॉ अम्बेडकर ने यह महसूस किया कि जातिवाद के मूल आधार हिंदू धर्म में ही निहित हैं अतएव हिन्दू धर्म का त्याग किए बगैर धर्मांतरण के जातिवाद का उन्मूलन एवं समतापरक समाज की स्थापना सम्भव नहीं है। उन्होंने दलितों से अपील की कि उन्हें अपनी मुक्ति के लिए सामूहिक रूप से बौद्ध धर्म अपना लेना चाहिए। उनकी अपील का सर्वाधिक प्रभाव उनके स्वजातीय महारों पर पड़ा और वे बड़े पैमाने पर नव बौद्ध के रुप में दीक्षित होने लगे। किंतु अम्बेडकर के बाद उनके अनुयायियों ने दलितों के सांस्कृतिक एवं सामाजिक एकीकरण की दिशा में कोई गम्भीर प्रयास नहीं किया, यहाँ तक कि बौद्ध धर्म भी दलितों के बीच विभाजन का एक कारण बन गया।

महाराष्ट्र के दलित नेताओं में केवल डॉ अंबेडकर के पौत्र प्रकाश अम्बेडकर ने वंचित जाति समूहों के साथ गठबंधन कर अपनी राजनीति को आगे बढाने का प्रयास किया। प्रकाश अम्बेडकर ने 4 जुलाई 1994 को रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया से अलग होकर भारिप बहुजन महासंघ नामक राजनीतिक दल का गठन किया। वर्ष 1999 में उनकी पार्टी अन्य पिछडी जातियों का समर्थन हासिल कर अकोला लोक सभा सीट जीतने में सफल हुई। 20 मार्च 2018 को प्रकाश अम्बेडकर ने एक नई राजनीतिक पार्टी वंचित बहुजन अघाड़ी का गठन किया। वर्ष 2019 के आम चुनावों में इस पार्टी ने ऑल इंडिया मजलिस ए इत्तेहादुल मुसलीमीन एवं अन्य तकरीबन 100 छोटी पार्टियों और सामाजिक संगठनों के समर्थन से चुनाव लड़ा। वंचित बहुजन अघाड़ी और ऑल इंडिया मजलिस ए इत्तेहादुल मुसलीमीन के इस गठबंधन ने इन चुनावों में लगभग 41 लाख मत प्राप्त किए जो कि कुल डाले गए मतों का लगभग 14 प्रतिशत है।

महाराष्ट्र के दलित आंदोलन में दलित पैंथर आंदोलन की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही जिसके युवा समर्थक अम्बेडकरवाद के साथ–साथ अमेरिकी ब्लैक पैंथर मुवमेंट और मार्क्सवाद से भी प्रभावित थे। दलित पैंथर मूवमेंट ने **दलित** शब्द को लोकप्रिय बनाया। दलित साहित्य का प्रसार भी इसी समय हुआ जो कि मराठी भाषा से शुरू हुआ एवं हिन्दी, तमिल तथा अन्य क्षेत्रीय भाषाओं में रचनाएं होने लगी। 1956 में डॉ अंबेडकर के बौद्ध धर्मांतरण के बाद बौद्ध धर्म की वर्तमान स्थिती का विश्लेषण किया गया है। महाराष्ट्र में दलितो में शिक्षा का प्रसार अधिक है यहां के दलित शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक रूप से ज्यादा समृद्ध है। जिसका विश्लेषण इस शोध प्रबंध में किया गया है।

उत्तर प्रदेश में दलित आंदोलन

डॉ अम्बेडकर के राजनीतिक विचारों को उल्लेखनीय सफलता कांशीराम द्वारा 1984 में स्थापित बहुजन समाज पार्टी को मिली। यह पार्टी अब तक भारत के सब से बड़े प्रांत में तीन बार अन्य दलों से गठबंधन कर के और एक बार अपने बुते पर बहुमत प्राप्त कर के सत्ता में आने में सफल हो चुकी है। किंतु 2012 के विधानसभा चुनावों में असफल होने के बाद इस पार्टी की

लोकप्रियता में तेजी से गिरावट हुआ है। 2014 के लोक सभा चुनावों में बसपा के न सिर्फ मत प्रतिशत में गिरावट आई बल्कि यह पार्टी अपना खाता खोलने में भी विफल रह गई। कई समीक्षकों का मानना है कि दलित सशक्तिकरण के अपने मूल एजेंडे से भटक जाने और भारतीय जनता पार्टी के हिंदुत्व एजेंडे के बर–अक्स किसी सांस्कृतिक एवं सामाजिक अभियान के अभाव में यह दल अपने लक्षित मतदाता समूहों को आकर्षित करने में विफल हो गया। इसी प्रकार यह पार्टी बिजली, सड़क, पानी जैसी आधारभूत सुविधाओं, रोजगार तथा आर्थिक विकास, शिक्षा और भ्रष्टाचार जैसे मामलों में भी आम जनता को अपने विश्वास में नहीं ले पायी और न ही युवाओं में तेजी से लोकप्रिय हो रहे इंटरनेट और सोशल मीडिया जैसे जन संचार और विचार–विमर्श के साधनों का प्रभावी इस्तेमाल कर पायी।

शिक्षा को अम्बेडकर ने दलित मुक्ति का मुख्य माध्यम माना था किंतु बहुजन समाज पार्टी ने अनेक बार सत्ता में रह कर भी दलितों की शैक्षणिक उन्नति की दिशा में कोई प्रयास नहीं किया। सांस्कृतिक आंदोलन के नाम पर बसपा शासन काल में अम्बेडकर और दलित मनीषियों के कई स्मारक बनाए गए किंतु दलित एवं पिछड़ी जातियों में बौद्ध धर्म के प्रसार का कोई बौद्धिक आंदोलन नहीं चलाया गया। इस प्रकार उत्तर प्रदेश में डॉ अम्बेडकर के राजनीतिक विचारों को लागू करने की दिशा में ही कुछ हद तक प्रयास किए गए कितु अम्बेडकरवाद के सामाजिक, सांस्कृतिक और बौद्धिक पहलुओं की उपेक्षा की गई।

महाराष्ट्र एवं उत्तर प्रदेश के दलित आंदोलन का तुलनात्मक अध्ययन यह बताता है कि इन दोनों राज्यों में अम्बेडकर के विचारों को अपनाने एवं उसे विकसित करने के बजाए स्वयं अम्बेडकर को ही प्रतीक बना कर रख दिया गया है। इन दोनों राज्यों में दलित आंदोलन किसी व्यापक और दूरगामी रणनीति के अभाव में व्यक्तिवाद और अवसरवादी राजनीतिक गठजोड़ का शिकार हो गया है। उतरप्रदेश में दलित राजनीति एवं पार्टी को यह सुनहरा अवसर मिला था कि वे सत्ता शासन को लंबे समय तक बरकरार रख सकती, अगर बसपा प्रत्येक व्यक्ति के उत्थान के लिए कार्य करती, अपने आर्गेनिक बुद्धिजीवी वर्ग का निर्माण करती एवं अपनी शैक्षणिक संस्थाएं विकसित करती ।

भारतीय समाज में बुद्धिजीवी वर्ग का स्वरुप और उसकी भूमिका

डॉ अंबेडकर के अनुसार देश का भविष्य उसके बुद्धिजीवी वर्ग पर निर्भर करता है। प्रत्येक देश में बुद्धिजीवी वर्ग सर्वाधिक प्रभावशाली वर्ग रहा है वह भले शासक वर्ग न रहा हो। बुद्धिजीवी वर्ग वह है जो दूरदर्शी होता है, सलाह दे सकता है और नेतृत्व प्रदान कर सकता है। किसी भी देश की अधिकांश जनता विचारशील एवं क्रियाशील जीवन व्यतीत नही करती है, ऐसे लोग प्रायः बुद्धिजीवी वर्ग का अनुकरण और अनुगमन करते है। यदि बुद्धिजीवी वर्ग इमानदार स्वतंत्र और

निष्पक्ष है तो उस पर भरोसा किया जा सकता है कि संकट की घड़ी में वह पहल करेगा और उचित नेतृत्व प्रदान करेगा। बुद्धिजीवी वर्ग उच्च विचारों वाले व्यक्तियों का समूह होता है जो समाज की सहायता करने के लिए तैयार रहता है एवं पथभ्रष्ट लोगों को सही मार्ग दिखाता है। या फिर ऐसा भी हो सकता है कि बुद्धिजीवी वर्ग सहजता से धोखेबाजों का एक गिरोह या संकीर्ण विचारों वाले वकीलों का एक निकाय हो सकता है जहां से उसे सहायता मिलती है। भारत देश में प्रारंभ से शिक्षा पर एक ही वर्ण का प्रभुत्व रहा है जो भी बुद्धिजीवी वर्ग है वह ब्रहम्ण जाति का ही दूसरा नाम है। इसलिए डॉ अंबेडकर शिक्षा पर जोर देकर दलितो में बुद्धिजीवी वर्ग का निर्माण करना चाहते थे जो दलितों केा सही दिशा दिखाए। उन्होने शिक्षित वर्ग एवं बुद्धिजीवी वर्ग में भी अंतर किया है बौद्ध भिक्खुओं का वर्ग बुद्धिजीवी वर्ग है। दूसरी ओर ब्राहमणों का वर्ग केवल शिक्षितों का वर्ग बन गया । बुद्धिजीवी वर्ग को किसी काम या किसी वर्ग से जुड़ने की कोई बंदिश नहीं होती है। दूसरी ओर शिक्षित वर्ग कोई बौद्धिक वर्ग नही होता हालांकि उसमें तर्क करने समझने और सोचने की अपनी शक्ति होती है। इसका कारण यह है कि शिक्षित वर्ग की दृष्टि का आयाम और नई विचारधारा के प्रति उसका रवैया उस वर्ग के हित में नियंत्रित होता है जिससे वह पहले से ही जुड़ा रहता है। स्पष्टतः ब्राहम्ण वर्ग अपनी वर्गीय हित एवं सर्वोच्चता वाली प्रवृति को क्यों छोड़ना चाहेगा । दलितों को ही अपना अलग विकल्प का निर्माण करना होगा। ज्ञान पर आधारित समतामूलक समाज द्वारा ही दलितों की स्थिति में ठोस एवं स्थायी परिवर्तन संभव है।

डॉ अम्बेडकर ने एक न्यायपूर्ण समाज व्यवस्था की स्थापना एवं जाति उन्मूलन के प्रश्न पर विचार करते हुए भारतीय समाज में शक्ति और प्रभुत्व के स्रोत को भी तलाश करने की कोशिश की। अपने अनुभव, अध्ययन और पर्यवेक्षण से उन्होंने यह महसूस किया कि किसी समय या समाज विशेष के परिप्रेक्ष्य में शक्ति और प्रभुत्व के स्रोत भी अलग–अलग होते हैं। उन्होंने दलित और बहिष्कृत वर्ग को जाति की जकड़बन्दी से मुक्त कराकर समान मानवीय धरातल पर लाने के लिए एक ओर उनके सामाजिक, धार्मिक, शैक्षणिक और सांस्कृतिक उत्थान की बात की दूसरी ओर उन्होंने उनके अधिकारों की रक्षा के लिए राजनीतिक सत्ता की प्राप्ति को भी आवश्यक बताया। अपने जीवन के आखिरी दौर में यद्यपि इसकी पूर्व पीठिका उन्होंने अपने सार्वजनिक जीवन के प्रारम्भ से ही शुरु कर दी थी, वे बौद्ध धर्म के नैतिक, बौद्धिक और करुणाशील स्वरुप में एक ऐसी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था के परिकल्पक बन गए थे जो स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व जैसे मूल्यों पर आधारित हो।

डॉ अम्बेडकर ने बौद्ध धर्म के आधार पर जिस सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था की परिकल्पना की उसमें बुद्धिजीवी वर्ग को सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करना था जो बौद्ध भिक्षुओं की तरह निजी सम्पति के मोह से मुक्त होकर स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व पर आधारित न्यायपूर्ण समाज के निर्माण के लिए जनसामान्य को प्रेरित कर सके। इसीलिए

अम्बेडकर ने दलितों को अपनी मुक्ति के लिए जो मूलमंत्र दिया उसमें उनके शिक्षित होने को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना गया था ताकि वे संगठित होकर नई व्यवस्था के निर्माण के लिए संघर्ष कर सकें। शिक्षा का व्यापक विस्तार ही किसी देश में बुद्धिजीवी वर्ग को जन्म देता है।

शोध उद्देश्य

इस शोध के निम्नलिखित उद्देश्य हैं–

- डॉ अम्बेडकर के सामाजिक विचारों का अध्ययन करना
- राजनीतिक विचारों का अध्ययन करना
- महाराष्ट्र एवं उत्तर प्रदेश के दलित आन्दोलन पर डॉ अम्बेडकर के सामाजिक व राजनीतिक विचारों के प्रभाव का अध्ययन करना
- महाराष्ट्र एवं उत्तर प्रदेश में दलित आन्दोलन की वर्तमान स्थिति का अध्ययन करना
- दलित आन्दोलन एवं राजनीति का भविष्य एवं चुनौतियों का अध्ययन करना

शोध परिकल्पना

- डॉ अम्बेडकर के दलित आन्दोलन का भारत के दलित समाज पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा है।
- दलितों को संवैधानिक प्रावधानों के द्वारा शैक्षणिक, आर्थिक एवं राजनीतिक रूप से सशक्त किया गया है।
- बौद्ध धर्म के प्रभाव से दलितों में सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना का विकास हुआ है।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध में ऐतिहासिक, विश्लेषणात्मक, वर्णनात्मक, तुलनात्मक अध्ययन पद्धति का प्रयोग किया गया है। साथ ही अध्ययन की सामग्री संकलन हेतु प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों से जानकारी एक़त्र करने का प्रयास किया गया है। प्राथमिक स्रोतों के रूप में बुद्धिजीवियों, सामाजिक कार्यकर्ताओं एवं शोधार्थियों से उनके मंतव्य एवं जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया गया हैं। द्वितीयक स्रोत के रूप में प्राचीन एवं मध्ययुगीन इतिहास की पुस्तकों के अतिरिक्त दलित राजनितिक चिंतको अम्बेडकर, फुले, पेरियार, कांशीराम एवं अन्य समकालीन चिंतकों से सम्बंधित विभिन्न पुस्तकों, शोध–प्रबंधों, पत्र पत्रिकाओं, जर्नल, इन्टरनेट, एवं अन्य साधनों का प्रयोग किया गया है।

अध्यायों का सारांश

प्रस्तुत शोध में अध्यायों का विभाजन निम्न शीर्षक के अनुसार किया गया है।

अध्याय प्रथम, **'परिचय'** है। प्रथम अध्याय में शोध विषय का सामान्य परिचय प्रस्तुत किया गया है। दलित आन्दोलन एवं डॉ अम्बेडकर का परिचय है। इस अध्याय में भारत में दलित आंदोलन के प्रादुर्भाव, प्रसार एवं दलित आंदोलन के बारे में संक्षिप्त परिचय दिया गया है।

अध्याय द्वितीय – 'डॉ. अम्बेडकर के सामाजिक विचार एवं प्रभाव', इस अध्याय में उन सभी सामाजिक विषयों का विश्लेषण किया गया है जिनपर डॉ अम्बेडकर ने अपने विचार दिए है। जो भारतीय समाज में विद्यमान थे। वर्णव्यवस्था, जातिव्यवस्था, जाति उन्मूलन के उपाय, शिक्षा पर विचार, डॉ अंबेडकर द्वारा महिला सशक्तिकरण के लिए किए गए प्रयास एवं बौद्ध धर्म पर उनके विचारों का अध्ययन किया गया है। सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के उपायों का भी वर्णन किया गया है।

अध्याय तृतीय– 'डॉ. अम्बेडकर के राजनीतिक विचार एवं प्रभाव 'प्रस्तुत अध्याय डॉ अंबेडकर द्वारा भारतीय परिप्रेक्ष्य में जो विचार हैं एवं उसके प्रभाव का अध्ययन है। राष्ट्रवाद, लोकतंत्र, जाति, वर्ग और लोकतंत्र, लोकतंत्र की सफलता के लिए आवश्यक शर्तों पर उन्होने जो विचार दिए हैं उसका वर्णन है।

अध्याय चतुर्थ– 'महाराष्ट्र में दलित आंदोलन' इस अध्याय में महाराष्ट्र में दलित आंदोलन की भूत, वर्तमान एवं भविष्य तीनों कालखंडों का क्रमवार विश्लेषण किया गया है। डॉ अंबेडकर को केंद्र मानते हुए, महाराष्ट्र के दलित आंदोलन का विभाजन निम्न तीन चरण में किया गया हैः –1. डॉ अम्बेडकर के पूर्व महाराष्ट्र में दलित आंदोलन 2. डॉ अम्बेडकर एवं दलित आंदोलन (जीवनकाल) 3. अम्बेडकर काल के बाद में दलित आंदोलन की दशा एवं दिशा ।

अध्याय पंचम– 'उत्तर प्रदेश में दलित आंदोलन' इस अध्याय में उत्तर प्रदेश की भूत, वर्तमान एवं भविष्य में दलित आंदोलन के उभार एवं घटनाओं का अध्ययन किया गया है। उत्तर प्रदेश भारत देश की सर्वाधिक जनसंख्या वाला राज्य है। यहां की दलित जनसंख्या 21.9 प्रतिशत है। उत्तर प्रदेश के दलित आंदोलन का अध्ययन करने में संपूर्ण दलित आंदोलन को तीन खंण्डों में विभाजित किया जा सकता है। डॉ अम्बेडकर को केन्द्र मानकर कालखंण्डों का निम्न विभाजन किया गया हैः– 1. डॉ अम्बेडकर के पूर्व का दलित आंदोलन 2. डॉ अम्बेडकर के जीवन काल के दौरान उतरप्रदेश में दलित आंदोलन एवं डॉ. अम्बेडकर का प्रभाव 3. अम्बेडकरोतर कालखंड– जिसमें कांशीराम के जीवनी का अध्ययन, बीएसपी का गठन, बहुजन राजनीति एवं वर्तमान दलित आंदोलन की दशा एवं दिशा का अध्ययन है।

अध्याय षष्ठम् – 'महाराष्ट्र और उत्तर प्रदेश के दलित आंदोलन का तुलनात्मक अध्ययन' सामाजिक, राजनीतिक, शैक्षणिक एवं बौद्ध धर्म के प्रभाव के आधार पर दोनों राज्यों के दलित आंदोलन का विश्लेषण किया गया है। शोध सर्वे का विश्लेषण भी इस अध्याय में किया गया है।

अध्याय सप्तम – निष्कर्ष, 'दलित आंदोलन की भावी दिशा' का अध्ययन किया गया है। दलित राजनीति पूरे देश में अभी वैचारिक, संगठनात्मक और नेतृत्वगत संकट से जुझ रही है। दलित समाज का एक बहुत बड़ा हिस्सा खास कर युवा वर्ग तेजी से हिंदुत्ववादी संगठनों की ओर आकर्षित हो रहा है। रिसर्च सर्वे में यह बात प्रकाश में आई कि दलित आंदोलन का केंद्र राजनीति को बना दिए जाने से दलित आंदोलन दिग्भ्रम का शिकार हो गया है। दलितों में शिक्षा की उपेक्षा हुई है जबकि डॉ अम्बेडकर ने शिक्षा को दलित जातियों को संगठित और संघर्षरत करने का माध्यम माना था। बौद्ध धर्म के मूल तत्वों को आत्मसात करने एवं इसके आधार पर समाज को पुनर्गठित करने के बजाए बुद्धिज्म को राजनीतिक प्रतीक मात्र बना दिया गया। दलित पार्टियों में व्याप्त व्यक्तिवाद और नायक पूजा की प्रवृति अम्बेडकर चिंतन के खिलाफ है। दलित आंदोलन में नए नेतृत्व कसमसाहट है।

निष्कर्ष –

कुछ दशक पहले तक दलित आंदोलन का प्रभाव विभिन्न राज्यों के कुछ सीमित क्षेत्रों तक होता था किंतु अब दलित आंदोलन का प्रभाव राष्ट्रीय स्तर पर देखा जाता है उदाहरणस्वरूप 2 अप्रैल का देशव्यापी हड़ताल, 200 पॉइंट रोस्टर को लागू करने के लिए दलित छात्रों एवं प्राध्यापकों द्वारा किया गया आंदोलन एवं महाराष्ट्र कोरेगांव हिंसा के विरूद्ध किया गया जनांदोलन। इन सभी आंदोलन में एक चीज सामान्य थी, वह थी डॉ अंबेडकर के विचारधारा के आधार पर लोगों का एकत्रित होना। डॉ अंबेडकर के विचारों के प्रभाव से देश के दलित समुदाय अपने को शिक्षित एवं संगठित कर रहे हैं लेकिन अभी भी दलितों की स्थिति में उल्लेखनीय सुधार नहीं हुआ है। नेशनल क्राइम रिकॉर्ड्स ब्यूरो की रिपोर्ट के अनुसार दलितों पर होने वाले 'अत्याचारों' में वृद्धि हुई है। 2006–16 की रिर्पोट के अनुसार दलितों के विरुद्ध प्रत्येक 15 मिनट में एक अपराध होता है। 6 दलित महिलाएं प्रतिदिन यौन दुराचार की शिकार होती हैं। 2006 में प्रति एक लाख दलितों में 2.4 के साथ अपराधिक घटनाएं होती थी जो 2016 में बढ़कर 20.3 हो गयीं। उत्तर प्रदेश में जहां दलितों की आबादी प्रतिशत 21 है वहां देशभर में दलितों के विरुद्ध सबसे ज्यादा अपराध और उत्पीड़न की घटनाएं हो रही हैं जो देशभर में दर्ज अपराध का 17 प्रतिशत है। दलित समुदाय अपने 84 प्रतिनिधियों को भारतवर्ष से लोकसभा में भेजते हैं, क्या उनकी जिम्मेदारी नहीं है कि वे इन अत्याचार के विरुद्ध अपनी सक्रियता दिखाएं। ज्यादातर वही दलित अत्याचार एवं दमन के शिकार होते हैं जो आरक्षण के प्रावधानों का औसत लाभ नहीं ले

पाए हैं। उन दलितों की जो शैक्षणिक एवं आर्थिक रूप से सशक्त हो गए हैं कि उनकी यह नैतिक जिम्मेदारी है कि वे छूटे वंचित दलितों की मदद करें। उन्हे सरकार के जागरूकता कार्यक्रमों से लोगों को अवगत कराएं। संवैधानिक प्रावधानों, सरकार की योजनाओं एवं साक्षरता के बढ़ने से दलितों की स्थिति में युगांतकारी बदलाव आए हैं। उदारीकरण, ग्लोबलाइजेशन से दलितों के रहन–सहन में बदलाव आया है। वे शहर की ओर पलायन करने लगे हैं। शहरों में अर्थोपाय के साधन हैं। परंपरागत जातीय पेशा छोड़कर अन्य व्यवसायों में जाने से इनकी आर्थिक स्थिति में सुधार आया है। शहरों में नवीन दलित मध्यम वर्ग उभरे हैं जिनकी अपनी महत्वाकांक्षाए हैं। दलित समुदाय का एक बड़ा वर्ग अच्छी शिक्षा एवं अच्छी नौकरी से अपने जीवन स्तर को ऊंचा उठा रहा है। 2011 की जनगणना के आधार पर भारत का कुल साक्षरता दर 74.04 प्रतिशत है। जिसमें से दलितों में साक्षरता दर 66.07 प्रतिशत है। महाराष्ट्र में दलितों की साक्षरता का प्रतिशत 79.66 है जबकि उत्तर प्रदेश में दलित साक्षरता 60.89 प्रतिशत है। स्वतंत्रता के पश्चात दलितों की साक्षरता दर 10.27 प्रतिशत थी जिसमें निश्चित रुप से उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। इसी प्रकार नौकरी पेशा दलित वर्गों की संख्या भी बढ़ी है। दलितों में एक मध्यम वर्ग बना है जो सामाजिक एवं राजनीतिक रूप से जागरूक है। शैक्षणिक एवं आर्थिक स्तर पर दलित महिलाओं की स्थिति में भी सुधार आया है। 2015–16 मिनिस्ट्री आफ पर्सोनेल, पब्लिक ग्रिवान्सेज एंड पेंशन की रिपोर्ट के अनुसार सरकारी नौकरियों में अनुसूचित जाति की संख्या 17 प्रतिशत है। शोध सर्वे में यह बात स्पष्ट रूप से सामने आई है कि दलितों में नौकरी एवं शिक्षा में आरक्षण के परिणामस्वरूप महाराष्ट्र एवं उत्तर प्रदेश के दलितों में साक्षरता के प्रतिशत में वृद्धि हुई है, एवं उनकी आर्थिक स्थिति भी उन्नत हुई है। महाराष्ट्र की तरह उत्तर प्रदेश के लोग भी दलितों में शिक्षा के प्रसार में डॉ अंबेडकर की भूमिका को सर्वोपरि मानते है। आरक्षण से दलितों को अलग सामाजिक पहचान बनी है। दलितों में एक मध्यम वर्ग उभरा है जो सामाजिक, शैक्षणिक, बौद्धिक एवं राजनीतिक रूप से जागरूक है भले ही इसका प्रतिशत कुल जनसंख्या अनुपात से कम है। शोध सर्वे से पता चलता है कि दलित आंदोलन का उद्देश्य दलितों की एकता को बनाए रखना होना चाहिए। दलित आंदोलन के आदर्श स्वरूप को विकसित करने के लिए दलितों में अधिकाधिक शिक्षा एवं चेतना का प्रसार करना होगा। डॉ अंबेडकर के विचारो को आधार बनाकर दलित आंदोलन का आदर्श स्वरूप विकसित किया जाए। साथ ही साथ दलित आंदोलन को मजबूती प्रदान करने के लिए दलितों को अपनी मीडिया स्थापित करनी चाहिए और सोशल मीडिया का रणनीतिक इस्तेमाल करना चाहिए। इस प्रकार **शोध प्रबन्ध की इस परिकल्पना की पुष्टि होती है कि डॉ. अंबेडकर के दलित आंदोलन का भारत के दलित समाज पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा है।**

दलितों की राजनीतिक स्थिति का अवलोकन करने एवं डॉ अंबेडकर के राजनीतिक विचारों के प्रभाव के अध्ययन के क्रम में पाया गया कि डॉ अंबेडकर दलितों को सत्ता की मुख्य भूमिका में

लाना चाहते थे। वे उनमें राजनीतिक जागरूकता पैदा कर शासक बनने की इच्छा उत्पन्न करना चाहते थे। पूना पैक्ट के बाद दलितों को आरक्षित सीटें मिली संसदीय लोकतंत्र में संवैधानिक प्रावधानों के द्वारा सीटें सुरक्षित कर दी गईं। जिससे दलितों को राजनीतिक प्रतिनिधित्व मिला। डॉ अंबेडकर के पश्चात् कांशीराम की बहुजन राजनीति ने दलितों को देश के सबसे बड़े राज्य में सत्ता के शीर्ष पर पहुंचा दिया। कांशीराम ने बहुजन राजनीति को मजबूत करने के लिए जातियों को सशक्त करने पर जोर दिया। कांशीराम ने देखा कि दलित राजनीति में मुख्यधारा की पार्टियों ने दलित नेताओं के बीच अपने लाभ के लिए राजनीतिक स्टूज वर्ग का निर्माण कर दिया है। राजनीतिक सफलता प्राप्त करने के लिए कांशीराम ने दलित–बहुजन समाज को सामाजिक एवं सांस्कृतिक रूप से मोबिलाइज करके सामाजिक सांस्कृतिक आंदोलन को सशक्त किया। जिसके फलस्वरुप उनकी राजनीतिक पार्टी बसपा सत्ता में आई। शोध सर्वे में दोनों प्रदेशों के अधिकांश लोगों का यह मानना है कि सिविल सोसायटी और मीडिया को दलित हितों के प्रति जागरूक रखना और आरक्षण व्यवस्था को कायम रखना दलित राजनीति की सबसे बड़ी उपलब्धि है। दोनों राज्यों में देश में स्वतंत्रता, समानता एवं बंधुत्व की स्थापना और वंचित तबकों के सरकारी सेवा में आने के अवसर को डॉ अम्बेडकर द्वारा रचित संविधन की सबसे बड़ी उपलब्धि माना गया है। महाराष्ट्र और उत्तर प्रदेश दोनों राज्यों के अधिकांश लोग आरक्षण के मौजूदा संवैधानिक प्रावधानों को जारी रखने के पक्ष में हैं। हालांकि शोध सर्वे में दोनों राज्यों के कुछ लोगों का मत है कि दलितों में सामाजिक और शैक्षणिक रुप से पिछड़ी जातियों का एक पृथक वर्ग बनाया जाए। साथ ही आरक्षण से लाभन्वित हो चुकी जातियों को क्रीमी लेयर में सम्मिलित किया जाना चाहिए। इस प्रकार इस **शोध परिकल्पना की पुष्टि होती है कि दलितों को संवैधानिक प्रावधानों के द्वारा शैक्षणिक, आर्थिक एवं राजनीतिक रूप से सशक्त किया गया।**

दलित बहुजनों को शिक्षित संगठित होकर लगातार संघर्ष करने एवं अपने बेहतर स्थिति के लिए प्रयत्न करते रहना होगा। आगे बढ़े हुए दलित समाज एवं दलित जनों का यह नैतिक उतरदायित्व है कि हाशिए पर रह रहे दलित समाज को आगे बढ़ने का अवसर सुलभ कराए। सर्वे में भी कमोबेश लोगों की यही मनोवृति सामने आई है तभी बहुसंख्यक समाज का आंदोलन सफल हो पाएगा अन्यथा अन्य इस बिखराव का लाभ उठाते रहेंगे। दलित बहुजन राजनीति के भविष्य एवं इस समाज के लोगों को अपनी वजूद को बनाए रखने के लिए डॉ अंबेडकर द्वारा दिए गए सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक सिद्धांतों और विचारों पर चलना ही स्थायी सफलता के लिए आवश्यक है। जिसमें डॉ अंबेडकर जाति के विनाश की जो बात करते हैं। उसी दर्शन पर चलते हुए दलित बहुजन आंदोलन को सफलता मिलेगी।

कांशीराम के इस सिद्धांत के विपरीत जातियों के गर्व करते के सिद्धांत पर चलकर सामाजिक आंदोलन एवं स्थानीय गर्व की मान्यताओं को बढ़ाया जिससे उन्हें राजनीतिक सफलता

मिली लेकिन यह स्थायी रूप से दलितों बहुजनों को शासक वर्ग में नहीं रख पाया। साथ ही साथ समस्त सामाजिक आन्दोलनों को भी छिन्न–भिन्न कर दिया। अवसरवादिता एवं सत्ता प्राप्ति के लिए सभी आदर्शो की बलि तक दे दिया गया। ज्ञान–विज्ञान, शोध और नवाचारों के इस दौर में दलित नेताओं द्वारा बुद्धि की बात और बुद्धिजीवियों से दूरी बना लेना, दलित बहुजन की स्वतंत्र राजनीति पर पूर्णविराम लगने जैसा हो गया है। संजय जोठे ने **'दलित बहुजन राजनीति के भविष्यः जाति से वर्ण और वर्ण से धर्म की राजनीति कि ओर'** में कहा है कि डॉ अंबेडकर के सिद्धांतों पर चलकर ही दलित बहुजन आंदोलन स्थायी सफलता प्राप्त कर सकता है। डॉ अंबेडकर एक समाजशास्त्री, मानवशास्त्री एवं राजनीतिज्ञ भी थे। उनका मानना था कि किसी भी राजनीतिक बदलाव के लिए मजबूत सामाजिक आंदोलन की पृष्ठभूमि रहती है। डॉ अंबेडकर समानता के लिए जाति के नाश को सर्वोच्चता देते हैं उनके सिद्धांत में जाति के नकार से ही शुरू होगा। अंबेडकर के सिद्धांत में जाति पर गर्व करने की बात तो दूर रही बल्कि जाति को एक सांगठनिक और राजनीतिक गणित का आधार भी नहीं मानते। वे जाति से बड़ी इकाई वर्ण और धर्म से शुरू करते हैं। डॉ अंबेडकर जातियों को अपनी रूढ़िवादी पहचानों से, अपनी मानसिक, शैक्षणिक, व्यवसायगत और धार्मिक गुलामी से मुक्त कराना चाहते थे। बुद्ध, कबीर और फुले भी जातियों को मिटाना चाहते थे। उनके विचार के मूल तत्व में जो बातें हैं वे महत्वपूर्ण हैं। वे दलितों, शूद्रों और महिलाओं के पतन का कारण धर्म और संस्कृति के मनोविज्ञान में खोजते है। जिसके लिए वे आर्य आक्रमण और रेसियल डिफरेंस के सिद्धांतों से नहीं उलझते हैं उन्हें नकार देते हैं। वे शोषण और विभाजन के समाज एवं मनोवैज्ञानिक इतिहास पर केंद्रित होते हैं। जिसके लिए वे ऐतिहासिक धर्म ग्रंथों में इसकी सत्यता तलाशते हैं। डॉ अंबेडकर इस निष्कर्ष एवं जाति को बनाए रखने की खोज पर पहुंच जाते हैं। उनके अनुसार केवल एक वर्ण की सर्वोच्चता को बनाए रखने के लिये एक ही देश के वाशिंदे के बीच रचे गए आंतरिक षडयंत्र की तरह ब्राह्मणवाद आता है। डॉ अंबेडकर ब्राह्मणवादी धर्म के न्याय सिद्धांत (जिसमें समानता, घृणा, दमन) और नीतिबोध (अवैंज्ञानिकता) पर सवाल उठाते हैं। इस ब्राह्मणवादी व्यवस्था के विपरीत बुद्ध और बौद्ध धर्म की खोज करते हैं। जो कि हिंदू ब्राह्मणवादी व्यवस्था के विकल्प के रूप में वे तैयार करते हैं। जिसकी जड़ें उसी इतिहास से जुड़ी है जिससे हिंदू धर्म निकला है। वर्तमान समय में दलित आंदोलन एवं दलित बुद्धिजीवियों को डॉ अंबेडकर के बताए मार्ग पर बढ़ाना है। इसका सीधा अर्थ ये है कि जातिविहीन समाज की कल्पना करते हुए डॉ अंबेडकर के बौद्ध धर्म को और जिस नैतिकता और आचारशास्त्र को चुना था उसका पूरी शक्ति से प्रचार करना उसी दिशा में राजनीतिक संगठन का निर्माण करना है। जाति पर गर्व करने का मतलब है ब्राह्मणवादी विभाजक षड्यंत्र पर गर्व करना। जाति पर गर्व करना मतलब जाटव, चमार, यादव, कुर्मी, धोबी सभी जातियों का आपस में लड़ते रहना जिसका फायदा ब्राह्मण वर्ण उठा लेता है। बौद्ध धर्म का प्रचार कर उसे आचार के सिद्धांत में लाया जाए। बौद्ध धर्म की नैतिकता, वैज्ञानिकता एवं तर्कशक्ति प्रचार के द्वारा सभी दलित बहुजनों को अंधविश्वास से बाहर निकालकर

बच्चों, युवकों एचं महिलाओं का वैज्ञानिक, लोकतांत्रिक और समतामूलक विचारधारा की तरह बौद्ध धर्म की शिक्षा दी जाए। ऐतिहासिक अध्ययनों से यह सिद्ध होता है कि दलित शुद्र बौद्ध ही हैं। हिंदू धर्म के अपमान के बदले अपने धर्म को उन्नत करें, अपनी संस्कृति को आगे बढ़ाना ही दलित आंदोलन का उद्देश्य होना है जिससे एक स्वस्थ राष्ट्र का निर्माण होगा। शोध सर्वे मे डॉ अम्बेडकर के नवयान बौद्ध धर्म में दलितों के धर्मान्तरित होने की अभिप्रेरणा को दोनों राज्यों के अधिकांश लोग बौद्ध धर्म के वैज्ञानिक, तार्किक और मानवतावादी होने के रुप में स्वीकार करते हैं। साथ ही कई लोग बौद्ध धर्म के स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के संदेश को दलितों के धर्मांतरण का कारण बताते हैं।

महाराष्ट्र के अधिकांश लोग जहाँ डॉ अम्बेडकर के 22 प्रतिज्ञाओं पर आधारित बौद्ध धर्म को अपनी आध्यात्मिक संतुष्टि का आधार मानते हैं वहीं उत्तर प्रदेश के लोग तार्किकता, नैतिकता और मानवीय मूल्यों के अनुपालन में आध्यात्मिक संतुष्टि प्राप्त होती है। शोध सर्वे में बौद्ध धर्मान्तरण से लाभ के विषय में पूछे जाने पर अतार्किकता और शोषण पर आधारित ब्राह्मणवाद से मुक्ति मिलने की बात कही बौद्ध धर्म उन्हें बौद्धिकता और तार्किकता का अनुसरण करने की प्रेरणा देता है। दूसरी ओर उत्तर प्रदेश के लोगों ने बौद्धिकता और तार्किकता के अनुसरण की प्रेरणा को बौद्ध धर्म का महत्वपूर्ण योगदान माना। इस प्रकार **यह शोध परिकल्पना सिद्ध होता है कि बौद्धधर्म के प्रभाव से दलितों में सामाजिक, सांस्कृतिक चेतना का विकास हुआ है।**

दलित राजनीति वर्तमान समय में एक ऐसी बंद गली में आकर फंस गई है जहां से उसके आगे बढ़ने की सम्भावनाएँ एकदम धूमिल नजर आती हैं। खास कर 2019 के लोक सभा आम चुनावों के परिणाम ने यह सिद्ध कर दिया है दलित बहुजन समाज का एक बड़ा हिस्सा भारतीय जनता पार्टी/आर एस एस के प्रभाव में आ चुका है। दलित बहुजन समाज पर भारतीय जनता पार्टी और आरएसएस के बढ़ते प्रभाव को केवल हिंदुत्व और राष्ट्रवाद का प्रभाव कह कर नहीं टाला जा सकता। समाज के कमजोर तबके के बहुत बड़े हिस्से ने भाजपा और आरएसएस के शीर्षस्थ नेतृत्व में निःस्वार्थता एवं कर्तव्यपरायणता की एक झलक भी देखी जो दलित बहुजन पार्टियों के व्यक्तिवादी और वंशवादी नेतृत्व की पृष्ठभूमि में और प्रगाढ़ होकर सामने आती है। कमजोर तबकों को भाजपाई शासन में सरकारी नीतियों का पारदर्शी और भ्रष्टाचार मुक्त क्रियान्वन नजर आया। भाजपा नेतृत्व भले ही मीडिया के प्रबंधन से लोगों को यह बात समझाने में सफल रहा कि भाजपा सरकार की प्राथमिकता गरीब लोगों की मदद करना है और उन्होंने इसके लिए आवास, शौचालय, बिजली, खाद्यान्न, ऋण माफी, किसानों को आर्थिक मदद, विवाह सहायता, निःशुल्क गैस सिलेण्डर आदि योजनाओं का जम कर प्रचार किया। यही नहीं, बल्कि भाजपा नेतृत्व ने दलित बहुजन समाज की उन जातियों को भी राजनीतिक महत्व दिया जो यादव और जाटव

जैसी बड़ी दलित पिछड़ी जातियों के नेतृत्व और उनके बड़बोले समर्थकों के द्वारा खुद को उपेक्षित महसूस कर रही थीं।

दलित पिछड़ा राजनीति की असफलता यूं तो पूरे देश में नजर आई किन्तु इसका निर्णायक स्वरूप उत्तर प्रदेश के चुनाव परिणामों से खास तौर पर उभर कर सामने आया। इन चुनावों में दलितों की राजनीतिक पार्टी बसपा और पिछड़ों की पार्टी सपा आपस में गठजोड़ करके भी भाजपा को हराने में विफल रही। यही नहीं अपितु इन दोनों पार्टियों का संयुक्त कैडर भी आरएसएस के जमीनी कार्यकर्ताओं की रणनीति का सामना करने में विफल रहा। वैसे सपा और बसपा का घटता जनाधार 2014 के लोक सभा चुनावों में इनकी पराजय और 2017 के विधान सभा चुनावों में इनकी करारी हार के दौरान ही सामने आ गया था। कई समीक्षकों ने सपा बसपा की राजनीतिक पराजय को विभिन्न रूपों में रेखांकित करने का प्रयास किया है। कई दलित चिंतक बहुजन समाज पार्टी की राजनीतिक पराजयों को दलित बहुजन सामाजिक आंदोलनों के कमजोर होने का परिणाम मानते हैं जो कि उनके अनुसार दलित ब्राह्मण गठजोड़ की सोशल इंजीनियरिंग की एक स्वाभाविक परिणति है। बद्रीनारायण जैसे समीक्षक इसे अति पिछड़ी और महादलित जातियों में हिंदुत्व के बढ़ते प्रभाव का परिणाम मानते हैं। संजय जोठे ने इसे बसपा की जातीय अस्मिता की राजनीति की हार और भाजपा की वर्ण और धर्म की राजनीति की जीत माना है। उनके अनुसार बसपा की पराजय ने कांशीराम की जातियों को मजबूत करने और जाति पर गर्व करने की राजनीति की सीमाओं को उजागर कर दिया है और भावी दलित बहुजन राजनीति को पुनः अम्बेडकर की जातियों की विनाश की विचारधारा और वर्ण एवं क्रमशः धर्म (बौद्ध धर्म) की राजनीति की ओर आगे बढ़ना होगा।

भाजपा और आरएसएस के सम्मुख दलित और पिछड़े नेतृत्व वाली पार्टियों की विफलता के पीछे कोई एक कारण या परिस्थिति जिम्मेवार नहीं है बल्कि यह भारतीय राजनीति के एक ऐसे चरण में पहुंच जाने का परिणाम है जिसमें ये पार्टियां खुद को पुराने तौर तरीके से चला पाने में कठिनाई की अनुभूति कर रही हैं। यह भारतीय राजनीति का वह दौर है जब भारतीय मतदाता अपनी जातिगत अस्मिताओं से ऊपर उठ कर अपने जीवन स्तर की बेहतरी पर ध्यान देने लगा है। जब छोटी छोटी दलित पिछड़ी जातियां भी राजनीतिक पटल पर अपनी उपस्थिति दर्ज कराना चाहती हैं। जब किसी पार्टी का कोई अदना कार्यकर्ता भी व्यक्तिवाद और वंशवाद के वर्चस्व से मुक्त होकर राष्ट्रीय और राज्यस्तरीय राजनीति में नेतृत्व हासिल करना चाहता है। राजनीति के इस दौर में आम लोग भ्रष्टाचार और लूट के जरिए कमाई हुई सम्पति को हिकारत से देखने लगे हैं और यह महसूस करने लगे हैं कि भ्रष्टाचार की गंगा व्यवस्था की ऊंचाइयों से निकलती है और सब से अधिक कहर समाज के कमजोर और गरीब व्यक्ति पर ही डालती है। दरअसल हालिया चुनावों में सपा, बसपा और राजद जैसी पार्टियों की हार इन पार्टियों द्वारा दिखाए गए सपनों और जगाईं गईं

उम्मीदों के पूरा न हो पाने से हुए मोहभंग का परिणाम है। इसमें कोई शक नहीं कि लोगों की आशाओं और उम्मीदों को जगा कर इन दलों ने राजनीति को एक नए दौर में पहुंचा दिया किन्तु अपने आंदोलनात्मक स्वरूप को छोड़ कर ये पार्टियाँ नेतृत्व, विचारधारा और संगठन तीनों स्तरों पर कमजोर पड़ती चली गईं। वैचारिक रूप से ये पार्टियां स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के सिद्धांत से दूर हट कर जहां जातिगत राजनीति के दलदल में फंसती चली गईं वहीं नेतृत्व के स्तर पर ये व्यक्तिवाद, वंशवाद और भाई भतीजावाद की राजनीति का इस कदर शिकार हुईं कि इनके लिए नवोदित कर्मठ, सुशिक्षित, कारगर और जुझारू नेतृत्व के लिए कोई स्थान ही नहीं रहा। व्यक्तिवाद, जातिवाद, अवसरवाद, विचारशून्यता और भ्रष्टाचार ने इन पार्टियों को सांगठनिक रूप से इतना कमजोर कर दिया कि इनका संपर्क आम लोगों से कटता ही चला गया है और ये पार्टियां जमीन से कुछ इस कदर कट गयीं कि चुनावों में होने पराजय को ये भांप तक नहीं पाईं।

उपरोक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि भारतीय राजनीति अपने विकास के एक ऐसे चरण में पहुंच चुकी है जिसमें राजनीति के घिसे पीटे तौर तरीकों को आजमा कर सफलता नहीं पाई जा सकती है। राजनीति के वर्तमान दौर में सफल होने के लिए दलित राजनीति को अपना आंदोलनात्मक स्वरूप पुनः हासिल करना होगा। वैचारिक रूप से खुद को सुदृढ़ करना होगा एवं ईमानदार, कर्मठ और प्रतिबद्ध नेतृत्व को आगे कर पार्टी विशेष के उस मोरल हेजेमनी (नैतिक वर्चस्व) को आम जनता में तोड़ना होगा जो उन्होंने ईमानदार युवा आदि जमीनी और जुझारू नेताओं को नेतृत्व देकर प्राप्त किया है।

नए नेतृत्व और राजनीतिक दलों का प्रादुर्भाव जन आंदोलनों की बदौलत होता है, जबकि जन आंदोलनों का जन्म समाज में व्याप्त विसंगतियों के विरुद्ध असंतुष्ट वर्ग के आक्रोश से होता है। वैसे समाज में व्याप्त विसंगतियां ही जन आंदोलन के उद्भव के लिए पर्याप्त नहीं होतीं जब तक की उत्पीड़ित समाज में एक ऐसे जागरुक, संवेदनशील और साहसिक बौद्धिक लोगों का आगमन न हो जो इन विसंगतियों के स्रोत और स्वरुप को समझ सकें, इन्हें अभिव्यक्त कर सकें और उत्पीड़ित वर्ग को अपने नेतृत्व से यह अहसास दिला सकें कि इन विसंगतियों से मुक्ति सम्भव है। ऐसे बौद्धिक नेतृत्व के अभाव में समाज का उत्पीड़ित वर्ग समाज में प्रचलित सत्ताधारी वर्ग की विचारधारा और चिंतन के प्रभाव में अपने उत्पीड़न को स्वाभाविक, अपरिवर्तनशील और अपने ही कर्मों और नियति का परिणाम मानता रहता है। अंतोनियो ग्राम्सी के अनुसार समाज में प्रचलित सत्ताधारी वर्ग की विचारधारा को प्रचारित करने का कार्य समाज के पारम्परिक बुद्धिजीवियों के द्वारा किया जाता है। जन आंदोलन के शुरुआती जुझारु दौर में आंदोलन का टकराव चूंकि सीधे तौर पर स्थापित सत्ता से होता है इसलिए आंदोलन से जुड़े लोग आंदोलन के लक्ष्यों और आदर्शों के प्रति वैचारिक प्रतिबद्धता से संघर्ष की ऊर्जा एवं ऊष्मा प्राप्त करते हैं। आंदोलन के नेतृत्व को लेकर भी बहुत खींच–तान नहीं रहती। संघर्ष के इस दौर में आंदोलन का नेतृत्व उसी व्यक्ति या

व्यक्तियों के समूह के पास रहता है जिसमें आंदोलन के उद्देश्यों और आदर्शों को अपने समाज या वर्ग के अधिकतम हिस्से तक संम्प्रेषित कर सकने का अभिव्यक्ति सामर्थ्य हो। दूसरे यह कि इस नेतृत्व या नेतृत्व समूह में स्थापित सत्ता से संघर्ष करते हुए त्याग करने का हौसला हो। दरअसल अपने इसी जुझारुपन और त्याग की बदौलत कोई नेतृत्व अपने समर्थकों का विश्वास, उनकी निष्ठा एवं प्रतिबद्धता प्राप्त करता है। किंतु जब कोई आंदोलन अपनी सफलता की ओर अग्रसर होता है और राजनीतिक आयाम प्राप्त कर सत्ता तंत्र में भागीदार बनने की स्थिति में पहुँचता है तो उस आंदोलन में नेतृत्व को लेकर कसमकश प्रारम्भ हो जाता है। प्रायः जन आंदोलनों से उभरने वाले राजनीतिक दलों में यह प्रवृति देखने को मिलती है कि सत्ता प्राप्ति के बाद इसका नेतृत्व व्यक्ति केन्द्रित होने लगता है। पार्टी में जी हुजूरी और चापलूसी करने वालों को तरजीह दी जाने लगती है और हर उस सम्भावित आवाज को दमित या पार्टी से बेदखल किया जाने लगता है जो पार्टी नेतृत्व के लिए खतरा बन सके। इस क्रम में एक ही जन आंदोलन से निकले नेतागण अपनी अलग–अलग पार्टियां बनाने लगते हैं जिसमें आंतरिक लोकतंत्र का शायद ही कोई स्थान रह जाता हो। यही नहीं अपितु आगे चल कर ये पार्टियां वंशवाद, परिवारवाद और भाई भतीजावाद का शिकार हो जाती हैं। आंदोलन से निकली पार्टियों के व्यक्तिवादी बन जाने कि यह प्रवृति महाराष्ट्र की विभिन्न रिपब्लिकन पार्टियों, उत्तर प्रदेश की बहुजन समाज पार्टी और समाजवादी पार्टी, बिहार की राष्ट्रीय जनता दल, जनता दल यूनाइटेड, हिन्दुस्तान अवामी और लोक जन शक्ति आदि पाटियों, तमिलनाडू की विभिन्न द्रमूक पार्टियों, दिल्ली की आम आदमी पार्टी जैसी छोटी पार्टियों में ही नहीं स्वतंत्रता आंदोलन से निकली कांग्रेस पार्टी में भी व्यक्तिवाद और वंशवाद की यह प्रवृति देखी जा सकती है। ऐसी विभिन्न पार्टियों में सत्ता का केन्द्रीकरण और लोकतंत्र तथा पारदर्शिता का अभाव इनकी मूल वैचारिकता को ही कुंठित नहीं करता बल्कि पार्टी में भ्रष्टाचार की प्रवृतियों को नियंत्रित करने वाले मैकेनिज्म को भी निष्क्रिय कर देता है।

इस सन्दर्भ में यह प्रश्न विचारणीय है कि आखिर समाज के समृद्ध वर्ग की हिन्दुत्व के सांस्कृतिक राष्ट्रवाद पर आधरित पार्टी, भारतीय जनता पार्टी समय–समय पर उठने वाले नेताओं के परस्पर विरोधी स्वर और उनके यदा–कदा होने वाले छिटपुट विद्रोह के बावजूद क्यों किसी बड़ी फूट का शिकार नहीं हुई और क्यों इसमें समय–समय पर सहजतापूर्वक नेतृत्व परिवर्तन होता रहा? साथ ही इस प्रश्न पर विचार करना भी महत्वपूर्ण है कि मूलतः संकीर्ण सामाजिक आधार और अपनी तमाम पूंजीवादी–उदारवादी आर्थिक नीतियों के बावजूद यह पार्टी ने किस प्रकार न सिर्फ दशकों से सत्तासीन चली आ रही कांग्रेस पार्टी को सफलतापूर्वक हासिए पर धकेल दिया बल्कि जातीय और क्षेत्रीय अस्मिता की बात करने वाली पार्टियों के अस्तित्व और औचित्य पर भी सवालिया निशान लगा दिया। वस्तुतः इन प्रश्नों पर गम्भीरतापूर्वक विचार–विमर्श कर के ही भावी दलित राजनीति अपनी दिशा और रणनीति तय कर सकती है। इसके लिए उसे न सिर्फ अपने

आंदोलन के मूल प्रेरणा स्रोत डॉ अम्बेडकर के विचारों और संघर्षों पर गम्भीरतापूर्वक मनन करना होगा बल्कि देश के विभिन्न भागों विशेषकर उत्तर प्रदेश एवं महाराष्ट्र में चले दलित राजनीति के प्रयोगों का भी आलोचनात्मक मूल्यांकन करना होगा।

राजनीतिक परिक्षेत्र में समतामूलक समाज और न्यायपरक शासन व्यवस्था की स्थापना के लिए भारतीय समाज के परम्परागत तबकों का आंदोलनरत होना एक आधुनिक परिघटना है। यद्यपि भारतीय इतिहास में पूर्व में भी वर्ण एवं जाति व्यवस्था को अनेक धार्मिक और सांस्कृतिक आन्दोलनों के द्वारा चुनौती दी गई थी पर भारतवर्ष के वंचित तबके कभी ऐसा जन आंदोलन खड़ा नहीं कर पाए जो जाति व्यवस्था का पूर्ण उच्छेदन कर निर्णायक तौर पर एक समतामूलक समाज व्यवस्था स्थापित कर दे। चाहे भारतीय इतिहास के पूर्ववर्ती धार्मिक और सांस्कृतिक आंदोलन हों या आधुनिक राजनीतिक आंदोलन इन सभी को अंततः असफलता का सामना करना पड़ा है और भारत की परम्परागत उच्च जातियां भारतीय समाज और सत्ता तंत्र पर अपना वर्चस्व कायम रखने में सफल रही हैं। इस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में हिन्दुत्व और सनातन धर्म का जयघोष करने वाली भाजपा और उसके मातृ संगठन राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का भारतीय राजनीतिक पटल को पूरी तरह से आच्छादित कर लेना भारतीय समाज में अब तक हुए सभी प्रगतिशील और परिवर्तनाकांक्षी जन आंदोलनों की रणनीति पर प्रश्न चिह्न लगा देता है। सच्चाई तो यह है कि डॉ अम्बेडकर के अतिरिक्त शायद ही किसी राजनेता या चिंतक द्वारा भारतीय परिदृश्य में स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व पर आधारित सामाजिक–राजनीतिक व्यवस्था और इसके लिए जरुरी जातिवाद के उच्छेद के मुद्दे पर गहराई और समग्रता से विचार किया गया है। विगत वर्षों में आनन्द तेलतुम्बड़े से लेकर संजय जोठे तक दलित राजनीति के कई अध्येताओं ने यह रेखांकित किया है कि अम्बेडकर के बाद दलित राजनीति के एजेण्डे से जाति उन्मूलन का मुद्दा सिरे से गायब हो गया है और सभी दलित–बहुजन राजनीतिक दल सामाजिक न्याय और सोशल इंजिनियरिंग के नाम पर जातीय अस्मिता और जातियों को मजबूत करने की राजनीति करने लगे हैं। अम्बेडकर के बाद शिक्षित दलितों ने अपने जीवन में सफलताएँ तो अर्जित की किन्तु वे उनके सामाजिक क्रांति के संदेश को भूल गए। विशेष तौर पर महाराष्ट्र में बड़े पैमाने पर लोगों ने बौद्ध धर्म को अंगीकार किया लेकिन यह अंगीकरण केवल अपनी अस्मिता की अभिव्यक्ति तक ही केन्द्रित रहा। डॉ अम्बेडकर न तो बौद्ध धर्म को केवल दलितों की सामाजिक–सांस्कृतिक अस्मिता की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाना चाहते थे जिसके अंतर्गत दलितों को कतिपय बौद्ध रीति–रिवाजों और संस्कारों को अपना कर अपनी सामाजिक पहचान को व्यक्त करना था न ही उनके लिए यह राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने का एजेण्डा था बल्कि डॉ अम्बेडकर बौद्ध धर्म को आधार बना कर पूरी सामाजिक, आर्थिक ढाँचे को पुनर्गठित करना चाहते। बौद्ध धर्म के सिद्धांतों को वास्तविक तौर पर ग्रहण न करने की वजह

से अपने जीवन में अहं एवं प्रलोभन तक को तिलांजलि नहीं दे पाए और बिना किसी आदर्श और दीर्घकालीन रणनीति के फूट का शिकार होते चले गए।

अम्बेडकर के बाद यदि किसी राजनेता ने दलित आंदोलन को सार्थक दिशा देने का प्रयास किया तो वे कांशीराम थे। उन्होंने अपनी प्रखर बौद्धिकता, कुशल सांगठनिक क्षमता, दृढ़ लक्ष्यबद्धता के जरिए इस बात को बखूबी भाँप लिया कि पूना पैक्ट के बाद दलितों का जो नेतृत्व अस्तित्व में आया है वह अपने राजनीतिक वजूद के लिए सवर्ण नेतृत्व की चमचागिरी करने के लिए बाध्य है। एक ओर जहाँ अम्बेडकर और उनके पूर्ववर्ती सामाजिक आंदोलनों को समग्रता से न समझ पाने, पिछड़ी जातियों और अल्पसंख्यक वर्गों से राजनीतिक गठजोड़ न कर पाने और स्पष्ट राजनीतिक एजेण्डे के अभाव में दलित राजनीति सवर्ण राजनीति की पिछलग्गू बनने को मजबूर है वहीं दूसरी ओर दलित शिक्षित नौकरीपेशा वर्ग किसी प्रेरणा और संगठन के अभाव में किसी भी सामाजिक दायित्व से रहित होकर 'सभ्रांतों के अलगाव' का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। ऐसी अवस्था में कांशीराम ने सर्वप्रथम नौकरी पेशा दलित–पिछड़े शिक्षित मध्यम वर्ग को बामसेफ संगठन के माध्यम से एकजूट कर उन्हें अपने सामाजिक दायित्वों से जोड़ा ताकि दलित आंदोलन के लिए खरे और समर्थ नेतृत्व का स्रोत प्राप्त हो सके। इसके बाद उन्होंने अपने आंदोलन के लिए तीन चरण तय किए जिसका उल्लेख उन्होंने अपनी पुस्तक चमचा युग में किया है। कांशीराम अपनी पुस्तक में लिखते हैं, 'सभ्रांतों के अलगाव' जैसी भयंकर बीमारी तक से निपटने में सक्षम खरे और समर्थ नेतृत्व की व्यवस्था करने के बाद, हम समस्या पर आते हैं। चमचा युग की समस्या का सफल समाधान करने के लिए, हमें इसे निम्नानुसार 3 भागों में विभाजित करना होगा–(1)चमचा युग की चुनौती से निपटना। (2) चमचा युग का अंत करना। (3) उज्जवल युग लाना। चमचा युग की चुनौती से निपटने के लिए कांशीराम ने अल्पावधि समाधान की रणनीति तय की जिसके अन्तर्गत डीएसफोर जैसे संगठन के माध्यम से सामाजिक कार्रवाई करनी थी। चमचा युग के अंत के लिए उन्होंने दीर्घकालीन समाधान की रणनीति तय की जिसके अंतर्गत दलित–शोषित समाज की अपनी पार्टी के जरिए राजनीतिक कार्रवाई की जानी थी। किंतु कांशीराम जानते थे कि जाति की समस्या का स्थायी समाधान और उज्जवल युग की स्थापना तभी सम्भव है जब सांस्कृतिक बदलाव और नियंत्रण लाया जाए। कांशीराम इस संदर्भ में भले ही बौद्ध धर्म का नाम नहीं लेते किंतु सांस्कृतिक बदलाव के जरिए उज्जवल युग की स्थापना की उनकी बात डॉ अम्बेडकर के निष्कर्षों से पूर्णतः मेल खाती है जिसका उल्लेख हमने ऊपर किया है। कांशीराम जिन पंक्तियों के साथ चमचा युग का अंत करते हैं उनमें एक दिग्गदर्शक की सीख और चेतावनी दोनों नजर आती हैः–

'पिछले अनुभव के आलोक में, यह निष्कर्ष दिया जा सकता है कि भविष्य का काम जबरजस्त है, विशेषकर तब जब हमें पता है कि जातियों की इस संस्कृति को इस व्यवस्था के लाभन्वितों का गुप्त और खुला समर्थन मिल रहा है। किंतु पूर्ण समानता की इस संस्कृति को परम

समानता में तब्दील करना हमारा लक्ष्य बने रहना चाहिए। वर्तमान संस्कृति पर व्यवस्था के लाभान्वितों का नियंत्रण है। किंतु परम समानता की बदली संस्कृति को हमेशा वर्तमान व्यवस्था के पीड़ितों के हाथों में ही रहना चाहिए। विध्वंश और भीतरघात से बचना अनिवार्य होगा। मौर्य समाज के पतन से हमें यही सबक सीखना है।'

आज जबकि दलित राजनीति सिद्धांतहीनता, स्वार्थबद्धता और गतिहीनता का शिकार हो चुकी है और नैतिकता और तार्किकता की बातें वे कर रहे जिनका पारम्परिक रुप से इन दोनों चीजों से वास्ता नहीं रहा है समाज के नेतृत्व और उज्जवल युग की स्थापना का दायित्व दलित और वंचित वर्ग के बुद्धिजीवियों के कंधे पर आता है, जिन्हें अम्बेडकर ने शिक्षित बनो, संगठित रहो एवं संघर्ष करो का नारा दिया था और जिन्हें कांशीराम ने 'संभ्रांतों के अलगाववाद' की बीमारी से मुक्त करा कर खरे और समर्थ नेतृत्व के सतत स्रोत के रुप में संगठित किया था।